International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(7): 07-10

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(7): 07-10
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 07-09-2015
Accepted: 11-10-2015

कपिल गौतम
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय,कोटा, राजस्थान 324010

Correspondence
कपिल गौतम
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय,कोटा, राजस्थान 324010

शांकरवेदान्त में अनिर्वचनीय ख्यातिवाद

कपिल गौतम

प्रबन्धसार

भारतीय मनीषियों के उर्वरा मस्तिष्क में जिस ज्ञान, कर्म और भक्ति के त्रिपथगा का प्रवाह उदित हुआ है उसने दूर-दूर के मानुषों के कल्मष को धोकर उन्हें पवित्र, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता का पूर्ण और सर्वाङ्गीण विकास किया है। आचार्य शंकर ने अध्यास सिध्दान्त के सन्दर्भ में अनिर्वचनीय ख्याति की स्थापना की जिसकी व्यापक पृष्ठभूमि है। पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा ख्याति के भिन्न भिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं इस पृष्ठभूमि के होने से ही आचार्य शंकर ने सर्वदोषविमुक्त भ्रम के सिद्धान्त "अनिर्वचनीयख्याति" का प्रतिपादन किया है । भ्रमस्थल में भी दार्शनिकों ने सूक्ष्म विवेचन किया है किन्तु भ्रमस्थल में दार्शनिकों के बीच मतभेद है। शंकरपूर्वदर्शनों में भ्रम को अत्यन्त असत् माना है परन्तु शंकर ने भ्रम के स्थान पर भ्रम से व्यापक अर्थ में अध्यास शब्द का प्रयोग किया है और उसे मिथ्या या सदसदविलक्षण माना है जो अत्यन्त असत् न होकर प्रातिभासिक सत्ता वाला है। परम सत्ता के विषय में दार्शनिकों की धारणाएं भिन्न- भिन्न हैं। सत्ता सम्बन्धी अपनी-अपनी धारणा के साथ ही भ्रम स्थान में भी सैद्धान्तिक मतभेद आवश्यक है।

यद्यपि ख्याति शब्द का अर्थ ज्ञान होता है परन्तु ख्याति शब्द भारतीय दर्शन में भ्रम के अर्थ में रूढ हो गया । प्रत्येक दर्शन का स्वभ्रम सिद्धान्त है । अद्वैत वेदान्त की परम्परा में जिस ख्याति के सिद्धान्त को स्थान प्राप्त हुआ वह अनिवर्चनीयख्यात के नाम से प्रसिद्ध है । प्रस्तुत शोधपत्र में अन्यान्य भारतीय दर्शन के भ्रम के सिद्धान्तों के परिचय पूर्वक शांकर वेदान्त में अनिर्वचनीय ख्यातिवाद के सिद्धान्त को शांकर वेदान्त प्रमुख आचार्यों के अनुसार सांगोपाग प्रस्तुत किया गया है ।

मूल शब्द: पञ्चख्याति, अनिर्वनीयख्याति, अन्तःकरण, स्मृतिविप्रमोष, रज्जु, सर्प, मिथ्या,अविद्या, माया, अज्ञान, अध्यास, शुक्ति-रजत, साक्षी, आरोप्य, आरोप्यमान |

भूमिका

भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदायों में अपने भ्रम-सिद्धान्त प्रचलित है । अद्वैतवेदान्त के प्राचीन ग्रन्थों में अनिर्वचनीय ख्याति सहित पञ्चख्याति का उल्लेख है।

उन ख्यातियों के नाम हैं-

"आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा ।
तथाऽनिर्वचनीयख्यातिरेतत्ख्याति पञ्चकम्" ॥ [1]

१- आत्मख्याति- विज्ञानवादी बौद्धों का मत ।

२- असत्ख्याति- शून्यवादी बौद्धों का मत ।

३- अख्याति- मीमांसक प्रभाकर का मत ।

४- अन्यथाख्याति- न्याय का मत ।

५- अनिर्वचनीयख्याति- अद्वैतवेदान्त का मत ।

इष्टसिद्धिकार विमुक्तात्ममुनि ने इष्टसिद्धि में संक्षेपतः ख्याति तीन प्रकार की बतलाई है। (१) सत्ख्याति, (२) असत्ख्याति एवं (३) सदसदनिर्वचनीय ख्याति

[1] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभा टीका सहित),अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, २००४, पृ० ३६.

भासर्वज्ञ ने न्यायभूषण में अष्टख्यातियों का उल्लेख किया है-

१- अख्याति- निरालम्बन ख्याति ही अख्याति है (माध्यमिक)

२- असत्ख्याति- असदवलम्बन ख्याति असत्ख्याति है (माध्यमिक एकदेशी)।

३- प्रसिद्धार्थख्याति- (चार्वाक)

४- अलौकिकार्थख्याति- (भट्टोम्बेक प्रमुख)

५- स्मृतिविप्रमोषख्याति- (प्राभाकर)

६- आत्मख्याति- (सौत्रान्तिक वैभाषिक योगाचार)

७- सदसत्वाद्यनिर्वचनीय ख्याति- (अद्वैतवेदान्ती)

८- विपरीतख्याति- (न्याय)।[2]

परवर्ती काल में रामानुज सम्प्रदाय का सत्ख्यातिवाद, माध्व का असत्ख्यातिवाद (इसे साधिष्ठानक असत्ख्यातिवाद कहा गया है) प्रसिद्ध हुये हैं। साङ्ख्यदर्शन द्वारा सदसत्ख्याति स्वीकृत है। भासर्वज्ञ ने निरालम्बन अख्याति की चर्चा की है जो कि अन्यत्र चर्चित नहीं है। यहाँ अद्वैत वेदान्त में विद्यमान अनिर्वचनीय ख्याति को शास्त्रीय शैली में स्पष्ट किया जा रहा है।

अनिर्वचनीयख्याति

अद्वैत वेदान्त में अध्यास का विनियोग अनिर्वचनीय ख्याति में ही है। आचार्य शंकर का भ्रम विषयक सिद्धान्त "अनिर्वचनीयख्याति" कहलाता है।अद्वैतवाद के अनुसार प्रमाज्ञानस्थलमें अन्तःकरणवृत्ति नेत्रादि द्वारा बहिर्गत होकर विषय में जाकर विषयाकार में परिणत हो जाती है। वेदान्त परिभाषाकार ने कहा है कि अन्तःकरण वृत्ति कुल्यात्मा बहिर्देश को जाकर अन्तःकरण और विषय दोनों को सम्बन्धित करती है।[3] उक्त प्रकार से वृत्ति के बहिर्गमन एवं विषय आकार परिणति से ही विषय का अज्ञानावरण भङ्ग होता है। तभी विषय ज्ञान होता है यही प्रमा या यथार्थज्ञान है। किन्तु जब रज्जू -सर्प भ्रमस्थल में अन्तःकरण की वृत्ति नेत्र द्वारा बहिर्गमन करके रज्जू देश में पहुँचकर तिमिरादि दोष के कारण रज्जुगत अज्ञानावरण भङ्ग करने में समर्थ नहीं हो पाती, तब उक्त वृत्ति रज्जु आकार में परिणत नहीं हो पाती [4]। जब अन्तःकरणवृत्ति रज्जु में आवरण भंग नही कर पाती तब रज्ज्वच्छिन्न चेतनागत ज्ञान में क्षोभ उत्पन्न होता है और अज्ञान सर्पाकार से परिणत हो जाता है। रज्जुसर्प भ्रम में जिस प्रकार सर्प अविद्या का परिणाम है उसी प्रकार उस रज्जुसर्पविषयकज्ञान अर्थात् वृत्तिज्ञान भी अविद्या का परिणाम है। रज्जुज्ञान से सर्प और सर्पज्ञान दोनो का बाध हो जाता है। रज्जु उपहित चैतनस्थ तमोगुणप्रधान अविद्या का परिणाम है तथा सर्प और साक्षी चेतनस्थ अविद्या के सत्वगुण का परिणाम वृत्ति ज्ञान है। रज्जुचेतनस्थ अविद्या का परिणाम जब सर्पाकार होता है तभी साक्षी आश्रित अविद्या का ज्ञानाकार परिणाम होता है। इस प्रकार भ्रमस्थल में सर्पादि विषय और ज्ञान एक साथ उत्पन्न होते है और रज्जु आदि अधिष्ठान से एक साथ एक ही समय में लीन भी हो जाते है इस प्रकार रज्जुसर्पभ्रम में बाह्य अविद्यांश सर्पादि का और साक्षिचेतनाश्रित अविद्यांश आन्तर वृत्ति का उपादान कारण है [5]। स्वप्न में साक्षि आश्रित अविद्या के तमोगुणांश का विषयरूप परिणाम होता है और उक्त अविद्या के सत्व गुण ज्ञानरूप परिणाम होता है अतः स्वप्न में अन्तःस्थ अविद्या ही विषय और ज्ञान दोनो का उपादान कारण होती है। इसी कारण बाह्य रज्जुसर्पादि पदार्थ और आन्तर स्वप्नादि पदार्थ साक्षी भास्य कहलाते है। अविद्या वृत्ति द्वार साक्षी जिसका भासक है उसे "साक्षी भास्य" कहते है। चित्सुखाचार्य ने कहा कि सत्य असत्व रूप से जिसका विचार सम्भव नहीं वह अनिर्वाच्य है।[6] सभी प्रकार के भ्रम ऐसे ही होते हैं [7]। संक्षिप्त रूप में यह देखा कि अनिर्वाच्य क्या है। इसके ज्ञान लेने पर यह प्रश्न उठता है कि अनिर्वचनीय ख्याति क्या है? ख्याति का अर्थ ज्ञान है। अनिर्वचनीय ख्याति का अर्थ दो प्रकार से है। प्रथम अनिर्वचनीय की ख्याति अर्थात् अनिर्वचनीय वस्तु का ज्ञान। अद्वैत मतानुसार ब्रह्मातिरिक्त सम्पूर्ण वस्तुएं अनिर्वचनीय हैं ऐसी अनिर्वचनीय वस्तुओं का ज्ञान भी अनिर्वचनीय है। दूसरा अर्थ हुआ वह ज्ञान जो अनिर्वचनीय हो। जगत् की अनिर्वचनीयता व्याख्या के लिये भ्रमस्थलीय रजत की अनिर्वचनीयता की सिद्धि करनी है क्योंकि दृष्टान्त रूप में प्रतिभासिक वस्तु को ही लिया जा सकता है। प्रातिभासिक वस्तु की अनिर्वचनीयता की सिद्धिपूर्वक व्याव्हारिक वस्तु की अनिर्वचनीयता की सिद्धि हो सकती है क्योंकि जिसका बाध होता है वह मिथ्या है, जो मिथ्या है वह अनिर्वचनीय है। प्रातिभासिक वस्तु की सत्ता का बाध वास्तविक सत्ता से तथा वास्तविक सत्ता का बाध पारमार्थिक सत्ता से हो जाता है। अतः इस प्रसंग में प्रातिभासिक तथा वास्तविक सत्ताऐं अनिर्वचनीय (मिथ्या) है। इस मत के अनुसार भ्रमस्थलीय शुक्ति रजत असत् नहीं क्योंकि उसकी प्रतीति "इदं रजतम्" इस प्रकार होती है।असत् का अद्वैत वेदान्त अनुसार अर्थ अलीक है जैसे आकाश-कुसुम, शशश्रृंग आदि है। जो कि आकाश-कुसुमादि की प्रतीति "इदं" रूप से कदापि नहीं हो सकती। "वन्ध्या सुतोऽस्ति" वन्ध्या का पुत्र है, के व्याकरण दृष्टि से शुद्ध होने पर भी तथ्यात्मक होने चाहिये तभी तात्विक होंगे। रजत सत् भी नहीं है क्यों कि शुक्ति रूप अधिष्ठान के ज्ञान से उसका बाध हो जाता है अतः यह सदसत् से विलक्षण मिथ्या या अनिर्वचनीय है। इस प्रकार अनिर्वाच्यत्व क्या है जान लेने पर, अब अनिर्वचनीयख्याति क्या है, विचार करना आवश्यक है। ख्याति का अर्थ ज्ञान है। अनिर्वचनीयख्याति का अर्थ दो प्रकार का है। प्रथम अनिर्वचनीय की ख्याति अर्थात् अनिर्वचनीय वस्तु का ज्ञान। अद्वैत मतानुसार ब्रह्मातिरिक्ति सम्पूर्ण वस्तुएं अनिर्वचनीय हैं, ऐसी अनिर्वचनीय वस्तुओं का ज्ञान भी अनिर्वचनीय है, अतः दूसरा अर्थ हुआ जो ज्ञान अनिर्वचनीय हो वही अनिर्वचनीयख्याति है, अर्थात् अनिर्वचनीय वस्तुविषयक ज्ञान भी अनिर्वचनीय है।जगत् की अनिर्वचनीय की व्याख्या के लिये भ्रमस्थलीय रजत की अनिर्वचनीयता की सिद्धि करनी है, क्योंकि दृष्टान्त रूप से प्रातिभासिक वस्तु को ही लिया जा सकता है। प्रातिभासिक वस्तु की अनिर्वचनीयता की सिद्धिपूर्वक व्यावहारिक वस्तु की भी अनिर्वचनीयता की सिद्धि हो सकती है। इस आशय से अद्वैतवेदान्तियों ने भ्रमस्थलीय प्रातिभासिक वस्तु की व्याख्या के लिये अनिर्वचनीयख्याति स्वीकार की है।

अद्वैतवेदान्त के इस अनिर्वचनीयख्यातिवाद को मण्डनमिश्र के अतिरिक्त सभी अद्वैताचार्यों ने स्वीकार किया है। मण्डनमिश्र नि भ्रम की व्याख्या में कुमारिलभट्ट स्वीकृत विपरीतख्याति को ग्रहण कियाहै। ऐसा उनके द्वारा लिखित ग्रन्थ विभ्रम विवेक एवं ब्रह्मसिद्धि से पता चलता है।[8]

विपरीतख्याति के अनुसार 'इदं रजतं' इस ज्ञान में इदं प्रत्यक्ष और रजत स्मृति ज्ञान हैं। स्मृतरजत को जो कि प्रत्यक्ष नहीं है 'इदं' में प्रत्यक्ष करने का भ्रम होता है। भ्रान्त व्यक्ति इस प्रकार स्मृति को प्रत्यक्ष के साथ अभिन्न मानकर इदं को रजत

---

[2] न्यायभूषणम् (टिप्पणी सहित), षड्दर्शन प्रकाशन, वाराणसी, १९६८, पृ. २६,

[3] वेदान्तपरिभाषा, व्या० गजाननशास्त्री मुँसलगावकर, चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, २००६, पृ. २३ .

[4] सिद्धान्तलेशसंग्रहः, सम्पा० वझेभाउ शास्त्री,चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८९, पृ. २१५।

[5] सिद्धान्तलेशसंग्रह पृ०४१७

[6] प्रत्येकसदसत्वाभ्यां विचारपदवीं न यत्।
गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवेदिनः॥- तत्त्वप्रदीपिका, १९।

[7] सत्त्वे वासत्वेन च विचारसहत्वेसति।
सदसत्वे च यद् विचारं सहते तदनिर्वाच्यम्॥ - तत्त्वप्रदीपिका।

[8] तस्मादवश्यं प्रतिषेध्यप्राप्तये विपरीतख्यातिरुपासनीया। ब्रह्मसिद्धि- सम्पा० कुप्पुस्वामी शास्त्री, गवर्नमेन्ट प्रेस, मद्रास,१९३७ पृ. १४३,.
वेदान्तप्रक्रियाप्रत्यभिज्ञा (मण्डन प्रस्थान परीक्षा) पृ. १९१, सच्चिदानन्द-सम्पादक, नरसीपुरम् १९६४।
विभ्रमविवेकभूमिका पृ. २ भी।
विभ्रमविवेकभूमिका पृ. ५७, ६२ उद्धृत - शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण, ले० स्वामी अभेदानन्द, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९७३ पृ० .

मान बैठता है, यही विपरीतज्ञान है, इसी को अन्यथाख्याति भी कहा है।[9] मण्डनमिश्र के ग्रन्थ भ्रमसिद्धि के ऊपर वाचस्पति मिश्र ने टीका लिखी है। उसमें वाचस्पति मिश्र भी विपरीतख्यातिवादी से लगने लगते हैं, परन्तु भामती के टीकाकार अमलानन्द स्वामी ने तत्कृत टीका कल्पतरु में वाचस्पति के अन्यथाख्यातिवादी होने का खण्डन किया है।[10] भामती टीकाकार के रूप में वाचस्पति के ऊपर अन्यथाख्यातिवादी होने का आरोप निराधार है, क्योंकि भामती में अनेक युक्ति और तर्कों से उन्होंने अनिर्वचनीयख्याति का ही समर्थन और संवर्द्धन किया है। मण्डनमिश्र के विपरीत ख्यातिवादी होने के दो कारण हो सकते हैं, एक कारण यह हो सकता है कि वे कुमारिल के अनुयायी मीमांसक थे। दूसरा कारण यह है कि आचार्य शङ्कर ने भाष्य में कहा है –'सर्वथाऽपि त्वन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति'। अर्थात् अन्य का अन्य में अवभास होना यह बात सभी ख्यातिवादों में है। इस आचार्य वाक्य का अर्थ मण्डन के अनुसार विपरीतख्याति के साथ भी किया जा सकता है, जिसमें जो धर्म नहीं, उसमें उस धर्म का आरोप विपरीत ही हुआ। इसी में संगति करते हुये मण्डन ने विपरीतख्याति स्वीकार की है।[11] जो भी हो अन्य सभी अद्वैतवेदान्ती "अतस्मिन् तद्बुद्धि" को अध्यास कहते हैं एवं अध्यस्त ज्ञान और वस्तु की व्याख्या में अनिर्वचनीयख्याति स्वीकार करते हैं। अनिर्वचनीयख्याति के अतिरिक्त अन्य ख्यातियों द्वारा भ्रम ज्ञान की पूर्ण व्याख्या नहीं की जा सकती।

अनिर्वचनीयख्याति-प्रतिपादन

भामतीकार ने अनिर्वचनीय ख्याति का उपबन्ध करते हुए लिखते हैं कि "परीक्षक विद्वानों के विवाद का पर्यवसित अर्थ करते हुए आचार्य शंकर कहते - *"सर्वथाऽपि अन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति"* ।[12] अन्य वस्तु में अन्य वस्तु की कल्पना ही अनृतता है और अनृतता ही अनिर्वचनीयता है। सभी दार्शनिकों के मत में अनिर्वचनीयता अवश्यम्भाविनी है अतः अनिर्वचनीयता एक स्वतन्त्र सिद्धान्त है – *"अन्यस्यान्यधर्म कल्पनाऽनृतता सा चानिर्वचनीयतेत्यधस्तादुपपादितम् । तेन सर्वेषामेव परीक्षकाणां मतेऽन्स्यान्यधर्मकल्पनानिर्वचनीयताऽवश्यम्भाविनीत्यनिर्वचनीयत सर्वतन्त्राविरुध्दोऽर्थः इत्यर्थः"।* [13] यह अनिर्वचनीयता केवल परीक्षकविद्वानों तक सीमित न होकर लोक में भी प्रसिद्ध है जैसा भाष्यकार कहते हैं –*"न केवलमियमनृतता परीक्षकाणां सिद्धाऽपितु लौकिकानामपीत्याह "तथा हि लोकेऽनुभवः शुक्तिका हि रजतवदवभासत इति"* । [14] क्या यह भ्रमरूपता केवल अन्य वस्तु की अन्य रुपात्मकता रूप ही है अथवा यह अभिन्न तत्त्व में भी घटित होती है ? इसके परिहार के लिए भाष्यकार ने अध्यास (अनिर्वचनीय ख्याति) का दूसरा उदाहरण दिया है – एकश्चन्द्र सद्वितीयवदिति। जैसे एक चन्द्र में द्वित्वादि का भ्रम हो जाता है वैसे ही एक ब्रह्मन् में अनेक जीवरूपता का भ्रम हो जाता है – *"अन्यस्यान्यात्मताविभ्रमो लोकसिद्धः, एकस्य त्वभिन्नस्य भेदभ्रमो न दृष्टः इति कुतश्चिदात्मनोऽभिन्नानां जीवानां भेदविभ्रम इत्यत आह एकश्चन्द्रसद्वितीयवदिति"* । [15]

अनिर्वचनीय ख्याति की स्थापना करते हुये प्रकाशात्मयति कहते हैं कि अख्यातिवाद में सद् (प्रत्यक्ष) और असद्(स्मृति) दो ज्ञान मानना पडेगा, प्रत्यक्ष पदार्थ की स्मृति, स्मरणाभिमान, तत्ता का प्रमोष, स्मृति का कारण , तन्निमित्तक प्रवृत्ति और जन्मान्तर में अनुभूत स्मृति इत्यादि दोष जो प्रमाणविरुद्ध है , की कल्पनाएं करनी पडेगी। इसी प्रकार अन्यथाख्याति में अन्यत्र प्राप्त का अन्य स्थल पर होना, इन्द्रियों का जन्मान्तर में अनुभव, देशकाल का व्यवधान आने पर भी पदार्थ को ग्रहण करना और उस प्रकार के पदार्थ के न देखे गये दोष शक्ति कल्पना करना, किसी प्रकार का सम्बन्ध न रहने भी रजत का प्रत्यक्ष होना ऐसी प्रमाणविरूद्ध अनेक कल्पनाएं करनी पडेगी। अतः इन समस्त दोषों को दूर करने के लिए जो जैसे ज्ञात हुआ है उसका मिथ्या एक स्वभाव है अर्थात् "रजत नहीं अपितु मिथ्या रजत ही प्रतीत हुआ है" यह जो अनुभवसिद्ध है उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। इस मिथ्यात्व का अविद्या उपादान है यह कल्पना अन्वय व्यतिरेक से सिद्ध है अतः इसे मायामय जानना चाहिए –*"अतः सर्वदोषपरिहाराय यथा प्रतिपन्नस्य मिथ्यात्वं नामैकः स्वभावो " नास्त्यत्र रजतम्, मिथ्यैव रजतमभादि इत्यनुभवसिद्धः समाश्रयणीयः अविद्योपादानकल्पनायाश्चान्वय-व्यतिरेकसिद्धत्वादित्याह अतोमायामयमिति"* ।[16] अब प्रकाशात्मयति अनिर्वचनीय ख्याति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि सत्यवस्तु का मिथ्या वस्तु के साथ मिलकर प्रतीत होना माया है यही मिथ्या है यही अनिर्वचनीयख्याति है और यही अध्यास है – *"सत्यस्य वस्तुनो मिथ्यावस्तुसंभेदोऽवभासमानो माया मिथ्याऽनिर्वचनीयख्याति"* [17] । इस प्रकार विवरणकार प्रकाशात्मयति ने अनिर्वचनीय ख्याति को मिथ्या तथा माया कहा है । रत्नप्रभाकार ने अनिर्वचनीयख्याति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि शुक्ति-रजत भ्रम स्थल पर शुक्ति में प्रत्यक्ष दिखलाई देने वाला रजत, देशान्तर (अख्याति व अन्यथाख्याति) और बुद्धि (आत्मख्याति) में तो रह नहीं सकता। यदि उसे शून्य (असत्ख्याति) माने तो उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।यदि वह शुक्ति (सत्ख्याति) में ही है तो उसका बाध नहीं हो सकता ।इसलिए यह प्रातीतिक रजत मिथ्या है । आरोप्य (रजत) का मित्थ्यात्व तो अनुभव सिद्ध है इसमें किसी युक्ति की अपेक्षा नहीं है क्योंकि वह नेदं रजतम् इस ज्ञान से बाधित होता है - *शुक्तौ अपरोक्षस्य रजतस्य देशान्तरस्य बुद्धौ वा सत्त्वायोगात्, शून्यत्वे प्रत्यक्षत्वायोगात् शुक्तौ सत्वे बाधायोगात् मिथ्यात्वमेवेति भावः। आरोप्यमिथ्यात्वे न युक्त्यपेक्षा, तस्य अनुभवसिद्धत्वात्*[18]।

अनिर्वचनीयत्व का स्पष्टीकरण

पंचपादिकार ने मिथ्या शब्द से अनिर्वचनीयत्व का स्पष्ट किया है - *"मिथ्या शब्दो द्वयर्थः अपह्नववनोऽनिर्वचनीयता वचनश्च"* । [19] मिथ्या को अनिर्वचनीय भी कहा है। नृसिहाश्रम ने वेदान्ततत्त्वविवेक में इसे सदसदनधिकरणत्वरूप से अनिर्वचनीय बताया है। प्रकाशात्मयति ने मिथ्या की परिभाषा दी है – *"प्रतिपन्नोपाधावभावप्रतियोगित्वमेव मिथ्यात्वं नाम"* । [20] यहाँ प्रतिपन्न उपाधि से आशय अपने आश्रय रूप से अभिमत है इससे शशविषाण आदि अलीक पदार्थों में अतिव्याप्ति नहीं होगी क्यों कि उनका कोई अधिष्ठान नहीं है। इससे ब्रह्मन् में भी अतिव्याप्ति नहीं होगी क्यों कि ब्रह्मन् सभी का अधिष्ठान है, ब्रह्मन् का अधिष्ठान कोई नहीं। विवरणकार का अनुसरण करते हुए वेदान्तपरिभाषाकार धर्मराजाध्वरीन्द्र ने स्पष्टीकरण हेतु अत्यन्ताभाव तथा यावत् पद जोड दिया है – *मिथ्यात्वं च स्वाश्रयत्वेनाभिमतयावन्निष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगित्वम्* । 'यावत्' पद से संयोग आदि में अतिव्याप्ति नहीं होगी जैसे कपिसंयोग का मूल में अभाव तो मिथ्या का

---

[9] विभ्रमविवेक , पृ० ४६.

[10] स्वरूपेण मरीच्यम्भो मृषा वाचस्पतेर्मतम्।
अन्यथाख्यातिरिष्टास्येत्यन्यथा जगृहुर्जनाः॥ वेदान्तकल्पतरु ,पृ. २४ उद्धृत – पूर्ववत् .

[11] वेदान्तप्रक्रियाप्रत्यभिज्ञा (मण्डन प्रस्थान परीक्षा) पृ. १९१ उद्धृत – पूर्ववत् .

[12] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभाटीका सहित), अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, २००४, ,पृ० ३७ .

[13] भामती पृ० ३३ .

[14] पूर्ववत् .

[15] पूर्ववत् .

[16] पूर्ववत्, पृ० ५१.

[17] पूर्ववत्, पृ० ५१.

[18] रत्नप्रभा पृ०३८

[19] पंचपादिका पृ० ६७

[20] पचपादिकाविवरण पृ० ५३

लक्ष्य कपि प्रतियोगि के अभाव को बताना नहीं है । चित्सुखाचार्य ने मिथ्या के दो लक्षण दिया है प्रथम है -*सदसविलक्षणत्वं मिथ्यात्वं* । [21] दूसरा लक्षण में विवरणकार का अनुगमन किया है – स्वाश्रय में अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी होना–

सर्वेषामपिभावानां, स्वाश्रयत्वेन संमते ।
प्रतियोगित्वमत्यन्ताभावं , प्रति मृषात्मता[22] ॥

अद्वैतसिद्धिकार मधुसूदन सरस्वती ने सद् के अतिरिक्त जो भी है वह मिथ्या है और त्रिकालाबधित तो केवल एकमात्र सत् है ब्रह्मन् । इसके अतिरिक्त शुक्तिरजत-जगतादि समस्त मिथ्या है – *सद्विविक्तत्वं वा मिथ्यात्वं*[23] ।

निष्कर्ष

निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि अनिर्वचनीयख्याति ही एकमात्र ऐसा सिद्धान्त है जो भ्रम की व्याख्या में पूर्ण और व्यवस्थित है । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अध्यास ही अनिर्वचनीयख्याति है जो माया या अविद्या का कार्य होने से अविद्या ही कहा जाता है इस अनिर्वचनीयख्याति या अध्यास या मिथ्यात्व या अविद्या का प्रमाणासहिष्णुत्व (प्रमाणों से अज्ञात) या विचारासहिष्णुत्व (विचार से परे होना) अद्वैतवेदान्त शास्त्र में निर्विवाद रूप से स्वीकृत है इसी का किञ्चित् दिग्दर्शन यहाँ किया जा रहा है –

आचार्य शंकर ने माया को अनिर्वचनीय तथा सदसदादि कोटियों के विचार से रहित बताया है-

“अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति”। [24]
“ सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो” । [25]

वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलीकार के अनुसार अज्ञान को प्रमाणों से जानना ऐसा ही माना गया है जैसे किसी के द्वारा उत्तम तेजवाले दीपक से अन्धकार को जानने की चेष्टा की जाए –

“अज्ञानं तु ज्ञातुमिच्छेत् यो मानेनात्यन्त मूढधीः ।
स तु नूनं तमः पश्येद् दीपेनोत्तम तेजसा” ॥[26]

सुरेश्वराचार्य का मत है प्रमाण के द्वारा प्रतिस्थापित न किये जाने में ही अविद्या का विद्यात्व है । यदि वह प्रमाण से सिद्ध हो जाए तो अवस्तु के स्थान के पर वस्तु बन जाए-

“अविद्यया अविद्यात्वमिदमेव तु लक्षणम्
यत्प्रमाणसहिष्णुत्वमन्यथा वस्तु सा भवेत्” ॥ [27]

सन्दर्भ -ग्रन्थ सूची -

1. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य(रत्नप्रभा टीका सहिता) अनु० यतिवर श्री भोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004 .
2. -ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, सम्पा० स्वामि सत्यानन्द सरस्वती, कृत हिन्दी व्याख्या एवं अनुवाद, गोविन्द मठ, वाराणसी,1965.
3. -ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, सम्पा० कन्हैया लाल जोशी (भामती, कल्पतरु,परिमल,टीकाओं सहित),परिमल पब्लिकेशन्स,दिल्ली 1982.
4. वेदान्तपरिभाषा, व्या० गजाननशास्त्री मुँसलगावकर, चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, २००६
5. पञ्चपादिका, अनु० किशोरीलाल स्वामी, रामतीर्थ मिशन, देहरादून, 2001.
6. पञ्चपादिकाविवरण, अनु० किशोरीलाल स्वामी, रामतीर्थ मिशन, देहरादून, 2001.
7. -भामती (वाचस्पति मिश्र कृत), व्या० स्वामी योगीन्द्रानन्द, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2005.
8. न्यायभूषणम् (टिप्पणी सहित), षड्दर्शन प्रकाशन, वाराणसी, १९६८
9. वेदान्तसिद्धान्त मुक्तावली, अच्युत कार्यालय काशी,१९३६.
10. ब्रह्मसिद्धि- सम्पा० कुप्पुस्वामी शास्त्री, गवर्नमेन्ट प्रेस, मद्रास,१९३७
11. बृहदारण्यभाष्यवार्तिक, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना, १९९२
12. विवेकचूडामणि, अनु० मुनिलाल, गीताप्रेस गोरखपुर, वि० स०२०६५
13. अद्वैतसिद्धि, सम्पा० अनन्त कृष्ण शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली,१९८२,
14. तत्त्वप्रदीपिका(चित्सुखाचार्य कृत), सम्पा०योगीन्द्रानन्द, षडदर्शनप्रकाशन प्रतिष्ठान वाराणसी,1974.
15. सिद्धान्तलेशसंग्रहः, सम्पा० वझेभाउ शास्त्री,चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८९
16. अभेदानन्द, शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,1973
17. Ramchandrana, T. P., The Concept of the Vy□vah□rika in Advaita Ved□nta, University of Indore, 1980.
18. Shastri, Kokileshvara, An Introduction to Advaita Ved□nata Philosophy, Bhartiya Publishing House, Delhi, 1979.
19. Sharma, V. K., Chitsukh's Contribution to Advaita Ved•nta, Kaivalya Publication, Maysore, 1974.
20. Sharma, Baldev Raj, Concept of ⌊tman In Principle Upni•ada ,Dinesh Publication, New Delhi, 1972.

[21] तत्वप्रदीपिका पृ० ३३

[22] तत्त्वप्रदीपिका पृ० ३९

[23] अद्वैतसिद्धि पृ० १९५.

[24] विवेकचूडामणि, अनु० मुनिलाल, गीताप्रेस गोरखपुर, वि० स०२०६५, पृ० ३२.

[25]पूर्ववत् .

[26] वेदान्तसिद्धान्त मुक्तावली, अच्युत कार्यालय काशी, पृ०१२५.

[27] बृहदारण्यभाष्यवार्तिक, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना, १९९२, पृ० १८१.